शोध साहित्य
(समसामयिक विषयों पर केंद्रित मासिक ई-शोध पत्रिका)
वर्ष – 1
अंक - 3
जनवरी 24

जन जातीय संसाधनों के मूल्यांकन और शोषण का परिदृश्य

महेश चंद्र अहिरवार
सह प्राध्यापक

सार संक्षेप

संक्षेप प्रस्तुत शोध आलेख के भारत में जनजातीय संसाधनों के शोषण और उससे उत्पन्न स्थिति की समीक्षा करना है। विगत दो दशकों में जनजातीय विकास के नाम पर जो जनजाति हितग्राही मूलक योजनाएं चलाई गई।इनसे जनजातियों की अस्मिता के लिए संकट उत्पन्न हो गया। क्योंकि जो देश और प्रदेश जनजाति बहुल क्षेत्र है उनके संसाधनों का अविवेकपूर्ण दोहन होने से वहां का परिदृश्य निरंतर बदल रहा है। सब्र समाज के संपर्क में आने से जनजातीय समूह अपनी लोक संस्कृति से अलग हो रहे हैं। प्रस्तुत शोध शोध आलेख के माध्यम से इस तत्व को प्रकाश में लाने की पहल की गई है। जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक विकास की योजनाएं उन्हें उनके मूल्य आवास से पृथक कर रही है जबकि जनजातीया परंपरागत रूप से आडंबर विहीन संस्कृति से परे अपने मूल्य संस्कृति परिदृश्य में जीवन यापन करने पर विश्वास करती है। अतः जनजातीय संसाधनों का विद्रोहन करके यदि उन्हीं के विकास पर योजना बनाई जाए तो निश्चित रूप से जनजातीय परिदृश्य बदलेगा।

प्राक्कथन

प्रस्तुत शोध आलेख में जनजाति संसाधनों के संसाधनों के शोषण से उत्पन्न स्थिति की समीक्षा करना है। भारत में वर्तमान समय में 700 से अधिक जनजातीय पाई जाती हैं। भारत की जनजातियों जनसंख्या में से देश की कुल जनसंख्या का 8.6 प्रतिशत है। इस प्रकार भारत के 10.45 करोड़ आदिवासियों न केवल संख्या की दृष्टि से महत्वपूर्ण है। अपितु अपने क्षेत्रीय बिस्तार में भी अनूठे हैं। हरियाणा, पंजाब, दिल्ली, को यदि छोड़ दिया जाए तो भारत के लगभग सभी प्रदेशों में जनजाति निवास करती है। आदिवासियों या जनजातियों को भारतीय संविधान की धारा 342 के अंतर्गत अनुसूचित जनजातियों के रूप में मान्यता प्राप्त

की गई है इस धारा के अंतर्गत अलगअलग जनगणना काल में नये समुदायो को राष्ट्रपति - द्वारा मान्यता दी जाती रही है। इस प्रकार वर्तमान में 700 जनजातियों को मान्यता प्राप्त है। प्रादेशिक दृष्टि से जनजातियों का कुल जनसंख्या में अनुपात भी अलग अलग है। नागालैंड-17, मेघालय 3, मिजोरम 5 जनजातीय पाई जाती है। भारत में 2011 के जनगणना के अनुसार अनुसूचित जनजातियों का प्रतिशत सबसे अधिक मध्य प्रदेश का है जिसकी जनसंख्या 153.16 लाख है। जो राज्य की कुल जनसंख्या में से 21.10% जनसंख्या जनजातियों की है पाई जाती है। उन जनजातीय जनसंख्या बहुल जिलों में जहां देशीविदेशी - राजनीतिज्ञों ने जनजातीय अस्मिता पर संकट का प्रश्न उठाया वहां कुछ जिलों को मिलाकर पृथक राज्यों का निर्माण कर दिया गया। इन जनजाति राज्यों में केंद्रीय सरकार विकास पर करोड़ों रुपए प्रतिवर्ष खर्च कर रही है। फिर भी जनजाति राज्यों की विकास दर सामान्य हो रही है। यह तथ्य इस मिथ को तोड़ता है की जनजातीय जनसंख्या के आधार पर राज्यों के निर्माण में विकास की गति तेज हो जाती है साथ ही यह है मिथ भी टूटता है की गैर जनजाति राज्यों में जनजातीय विकास पर ध्यान काम दिया जाता है।

पिछले दो दशकों का इतिहास तो यही बतलाता है कि जनजातिय विकास के नाम पर पहले तो कुछ आदिवासी जनसंख्या बहुल जिलों को जोड़कर पृथक राज्य की मांग होती है। और उसके बाद विदेशों में इन राज्यों को स्वायत्तता देने की बात उठाई जाती है। इस प्रकार की मांग के पीछे दो तर्क के रखे जाते हैं। पहला यह है कि गैर जनजातीय जनसंख्या का सैलाब जनसंस्कृति को डुबोये दे रहा है साथ ही उपलब्ध जनजातीय संसाधनों को छीना जा रहा है। दूसरा है कि गैर जनजातीय वर्ग जनजातियों के विकास में पर्याप्त रुचि नहीं लेता। हमें इस राष्ट्रीय संगोष्ठी में इन्हीं समस्याओं के विभिन्न बिंदुओं पर विचार करना है। स्पष्ट है कि शोषण अपने व्यापक अर्थ में जनजातीय अस्मिता के संकट को ही रेखांकित करता है। यह एक नीतिगत राष्ट्रीय प्रश्न भी है। अतः जनजाति शोषण को समस्या को समझने के लिए हमें इस विचार के विकास की तरह में जाना होगा। जनजातीय अस्मिता के संकट या जनजातीय शोषण के विचार के संबंध में दो परंपरागत विरोधी मतो की चर्चा करना आवश्यक समझता हूं। इन मतों में इतना अधिक विरोध है कि जनजातियों से संबंधित परिदृश्य ही बदल जाते हैं। विदेशी विचारकों के अनुसार भारतीय जनजातियां शेष भारतीयों से अलग नस्ल और अलग संस्कृति के समाज हैं। इस मत के अनुसार सभी जनजातीया भारतीय

समाज के प्रभाव से दूर गहन वनों , पर्वतों या पठारो में अलगाव की स्थिति में विकसित हुई। अधिकांश जनजातियों का कोई स्वीकृत इतिहास इस मत की दृष्टि से नहीं है। इस मत की सबसे प्रमुख सैद्धांतिक स्थापना यही है। कि भारतीय जनजातियां संभवतः हड़प्पा और मोहनजोदड़ो काल में अधिक सुसंस्कृत थी किंतु जिन्हें पार्वती आक्रांताओं ने वनों में खदेड दिया। इस तरह इस मत के संस्थापकों ने जनजातियों को भारत का मूल निवासी या आदिवासी माना।इस सिद्धांत को स्थापित होने में एक सदी से भी अधिक समय लगा । इसके मूल प्रस्तोता ब्रिटिश समाजशास्त्रियों थे एक बार यह लेने पर की जनजातीया शेष भारतीयों से अलग है यह कहना आसान हो जाता है। कि उनके अस्तित्व पर संकट पैदा करने वाले शेष भारतीय हैं। जिन्होंने यहां के मूल निवासियों पर बार बार अत्याचार प्रारंभ कर दिए और जो आज भी जारी है। रिचर्ड टेंपल टेंपल ने तो एक सदी पहले कहा था कि आदिवासी भारत की तृतीय धारा है उन्होंने प्रथम धारा हिंदुओं को और द्वितीय धारा मुसलमान को बतलाया।

भारत के स्वतंत्रता के बाद इस वर्ग के विद्वानों ने भाषा तो बदली किंतु उनका मूल विचार अपरिवर्तित हो रहा। स्वातंत्र्योत्तर काल में इस वर्ग के सबसे चर्चित विदेशी विद्वान बेरियल एल्विन थे जो लंबे अरसे तक मध्य प्रदेश के आदिवासियों के बीच रहे, उन्होंने मध्य प्रदेश की जनजातीयो पर अनेक ग्रंथ लिखे साथ ही उन्होंने अपने मानक ग्रंथ ए फिलासफी ")"फार नेफा1958) में आदिवासियों के प्रति भारतीयों एवं भारत सरकार का क्या रुख हो रहा इस पर अपनी विचारधारा को विस्तार से लिखा कुल मिलाकर कुल मिलाकर बेरियल एल्विन ने अपना यह डर व्यक्त किया कि स्वतंत्र भारत के विकास की गति में कहीं आदिवासियों की अस्मिता लुप्त ना हो जावे । आदिवासियों की पहचान बनी रहे।इसके लिए उन्होंने अनेक उपाय सुझाए बताएं। बेरियल एल्विन स्वतंत्र भारत के प्रथम और प्रभावी विदेशी जनजाति विशेषज्ञ जिन्होंने आदिवासियों के लिए अलगाव बाद का रास्ता सुझाया। यह एक विडंबना की ही बात है कि तत्कालीन भारत शासन ने बेरियल एल्विन की विचारधारा को खुले शब्दों में नकारते हुए नकारते हुए भी उन्हें जनजातीय अध्ययन के लिए सम्मानित किया। भारतीय विचारकों के एक वर्ग में में बैरियर एल्विन को विचारधारा का यह कहकर विरोध किया था कि वह जनजातियों को चिड़ियाघर की वस्तु नहीं बनने देंगे नहीं बनने देंगे। किंतु भारतीय विद्वानों के एक बड़े वर्ग में बैरियर एल्विन की विचारधारा को सहमति दी क्योंकि उनका मत अधिकांश यूरोपीय विद्वानों को ग्रहय था।

पिछले दो दशकों में भारतीय जनजातीयो पर जिस व्यक्ति का सर्वाधिक चर्चित साहित्य है वें है जर्मन क्रिस्टोफ वान फ्यूरर हैमर डाफपृष्ठ का बोर्न स्टॉकबॉर्न जनजातीय से डार्क हमारे समय के सबसे अधिक लाभ प्रतिशत इस विद्वान ने भारतीय जनजातियों के शोषण के विचार को बहुआयामी बनाया यह एक संयोग ही है की अंग्रेजी भाषा में उनके प्रमुख लिखो में से एक लेख लंदन से प्रकाशन होने वाली भूगोल की प्रमुख पत्रिका ज्योग्राफीकल" मैगजीनमें भी प्रकाशित हुआ। श्री हेमनडाफ ने इस लेख में भारत सरकार " को भारतीय जनजातियों का प्रमुख शोषण निरूपित किया था। बिगत लगभग डेढ़ दशक में उन्होंने बेरियल एल्विन की छायावादी शैली को त्यागकर यथार्थवादी शैली में भारतीय जनजातियों के शोषण को चार बार में उदाहरण द्वारा समझाया ।

1. जनजातियों का व्यक्तियों द्वारा शोषण।
2. जातियों का शेष जनजातियों द्वारा शोषण।
3. जनजातियों का सरकारी अमलों द्वारा शोषण ।
4. जनजातियों का राज्य शासन द्वारा शोषण।

उपर्युक्त शोषणो का विवरण सुधीजन उनकी प्रसिद्ध पुस्तक "ट्राइब्स आफ इंडिया" 1982 को पढ़कर प्राप्त कर सकते हैं इसी पुस्तक में उन्होंने नक्सलियों द्वारा जनजातियों के हेतो की रक्षा करने के लिए उनकी प्रशंसा भी की है। हेमनड्रॉप की परवर्ती पुस्तकों ने नक्सलवाद को कितनी हवा दी है यह तो शोधकर्ता ही बता सकेंगे इतना आवश्यक हो चुका है कि भारतीय विद्वानों का एक बड़ा वर्ग जनजातीय क्षेत्रों के किसी भी विकास को जनजातियों के लिए अब अनिष्ट कारक मानता है।

भारतीय जनजाति विशेषज्ञों का वह वर्ग जो विदेशी विद्वानों के मत से असहमत है यह मानता ही नहीं है की जनजातियों का जैविक या सांस्कृतिक विकास सर्वत्र एकत्रित रहा है। जनजातियों के रक्त और धार्मिक मान्यताओं का विश्लेषण करने पर जनजातीया भारतीय मूलधारा की ही साबित होती है। इस विचारधारा को मान्यता देने वाले विद्वानों का यह मत है कि प्रौद्योगिकी ऐतिहासिक काल से ही भारत में नगरीय , ग्रामीण और आवश्यक संस्कृतियों रही हैं जिनकी अपनी विशेषताएं थीं । इन तीनों वर्गों के लोग एक दूसरी संस्कृति के मिश्रित

होते रहते थे। इसके विपरीत यूरोप में आरण्यक संस्कृति बहुत पहले ही लुप्त हो चुकी थी। इसलिए उनका अनुभव यूरोपीय विद्वानों को नहीं है इस मत के अनुसार साम्राज्यवादी शक्तियां सदैव ही अपराध बोध से ग्रसित रही हैं क्योंकि उन्होंने उत्तर और दक्षिण अमेरिका की महान आदिवासी संस्कृतियों को न केवल नष्ट कर दिया था वरना उन्होंने वहां की आदिवासी जनसंख्या को भी लगभग समूल नष्ट ही कर दिया था। विदेशी विद्वान आज तक यह सिद्ध नहीं कर सके कि किसी मौर्य ,गुप्त, खिलजी मुगल या मराठा विजेता ने जनजातियों का नरसंहार किया हो। भारत में मुगल और माराठो के काल तक भी जनजातियां राजा राज्य कर रहे थे जिनकी प्रजा में भारी संख्या में गैर जनजातीय लोग पलते थे। विद्वानों का यह वर्ग भारतीय संदर्भ में प्रयुक्त आदिवासियों या जनजाति शब्द के प्रयोग को ही गलत मानता है।

इस वर्ग के विद्वान शोषण को नकारते नहीं है किंतु उसे अलग ढंग से परिभाषित करते हैं।यादि हम इसे सरल भाषा में कहना चाहे तो यह शोषण कुछ वर्ग का है जिसमें हम भारत की आधी जनसंख्या अर्थात महिलाओं को शोषित मानते हैं नगरीय और ग्रामीण संस्तरो के शीर्षकों की गिनती पर में अनेक बड़े उद्योगपति शामिल किए जाते हैं। तथा मोटे कपड़ों पर टैक्स लगाने पर शासन को भी शोषित कर दिया जाता है। इन भारतीय विचारों का यह भी कहना है कि भारत न केवल एक देश के रूप में विश्व के निर्धनतम देशों में से एक है वरन भारत की शहरी और ग्रामीण जनता में भी घोर दरिद्रता व्याप्त है जो की जनजातियों की गरीबी से तुलनीय है किसी वर्ग के कुछ विद्वान यह भी आरोप लगाते हैं की जनजातियों को भड़काकर क्षेत्रीय विकास में रोड इस वर्ग के विद्वान शोषण को नकारते नहीं है किंतु उसे अलग ढंग से परिभाषित करते हैं।यादि हम इसे सरल भाषा में कहना चाहे तो यह शोषण कुछ वर्ग का है जिसमें हम भारत की आधी जनसंख्या अर्थात महिलाओं को शोषित मानते हैं नगरीय और ग्रामीण संस्तरो के शीर्षकों की गिनती पर में अनेक बड़े उद्योगपति शामिल किए जाते हैं। तथा मोटे कपड़ों पर टैक्स लगाने पर शासन को भी शोषित कर दिया जाता है। इन भारतीय विचारों का यह भी कहना है कि भारत न केवल एक देश के रूप में विश्व के निर्धनतम देशों में से एक है वरन भारत की शहरी और ग्रामीण जनता में भी घोर दरिद्रता व्याप्त है जो की जनजातियों की गरीबी से तुलनीय है किसी वर्ग के कुछ विद्वान यह भी आरोप लगाते हैं की जनजातियों को भड़काकर क्षेत्रीय विकास में रोड अटकना साम्राज्यवादी हरकत है। यह शक्तियां देश को बांटना भी चाहती हैं और घरेलू मोर्चे पर उलझाना भी। देश

के अधिकांश जनजातीय क्षेत्र चाहे वे मध्य प्रदेश के हो या फिर उड़ीसा बिहार या पूर्वी सीमांत के सभी नाना प्रकार के खनिजों के भंडार हैं अनेक विदेशी शक्तियों की कुटिल चाल यही रही है की इन महत्वपूर्ण क्षेत्रों में अलगाववादी हवा दी जावे ताकि यदि देश विखंडित हो तो इन ताकतों को फायदा मिले। दुनिया भर के समाजशास्त्रीय आदिवासियों को उनके प्रति होने वाले अन्य को तो बढ़ा चढ़ा कर समझाते हैं पर कर्ज में डूबा भारत आदिवासी परियोजना में कटौती नहीं स्वीकारता इस तथ्य को छिप जाते हैं।

जनजातीय क्षेत्रों में संसाधनों का उपयोगजनजातीय क्षेत्र केवल आधी सदी पूर्व तक -: विपुल रूप से वनाच्छादित थे, किंतु इस अवधि में भारी मात्रा में वनों की कटाई हुई और पर्यावरण संतुलन को काफी क्षति। वनों की यह अंधाधुंध कटाई बढ़ती हुई आबादी के ईंधन की पूर्ति के लिए, इमारती लकड़ी के लिए ,कृषि योग्य अधिक भूमि प्राप्ति के लिए, उद्योगों, खनिजों एवं ग्रामीण और नगरी आधिवासो की विभिन्न आवश्यकताओं के लिए की गई। क्योंकि जनजातियों के जीवन का सर्वस्व ही वन है अतः वनों की कमी होने पर उन पर घोर संकट आ गया। यह संकट एक ऐसा यथार्थ है जिसे नकारा नहीं जा सकता। इस संकट का कारण कुछ भी रहा हो आलोचकों ने इस आधार पर समूचे भारतीय समाज और भारत की केंद्रीय तथा प्रादेशिक सरकारों पर शीर्षक होने का ठप्पा लगा दिया जबकि इस त्रासदी के पीछे साम्राज्यवादियों की वह नीति थी जिस पर कोई ध्यान ही नहीं देना चाहता। भारत में मुगलों और मराठों की सत्ता के समय तक वनों को साधारण जनता चाहे वह आदिवासी हो या गैर आदिवासी उपभोग के लिए मुक्त रखा गया था। जहांगीर में तो वनों को बिना अधिग्रहित किए ही ऐसे कानून बना रखे थे जिसे पर्यावरण भी सुरक्षित था और वन उपज का उपयोग भी किया जा सकता था किंतु अंग्रेजों ने वनों को अधिग्रहित कर पहली बार सारी जनजातियों को सीधे अपना दास बना लिया अंग्रेजों ने एक और तो सरकारों सरकारी वनों के विभिन्न वर्ग बनाए और दूसरी ओर वैयक्तिक वनों जैसे मालगुजारी जन्मोधारी इत्यादि नाम दिए गए की भी व्यवस्था रखी जिसका क्षेत्रफल भारत में 40 लाख हेक्टेयर या 40,000 वर्ग किलोमीटर था इस प्रथा के रहते जनजातियों की एक बड़ी जनसंख्या को अंग्रेजों ने अपने गुलामी का भी गुलाम बना दिया स्वतंत्रता प्राप्ति के बाद जब भारत सरकार ने सन 1951 में इस भूमि से जमींदारी मालगुजारी आदि हकों को समाप्त किया तब एक विचित्र स्थिति पैदा

हो गई इस बड़े वनाच्छादित भूभाग को तत्कालीन वन विभाग ने संभालने में असमर्थता दिखलाई।

इसी बीच शासन के खिलाफ विभिन्न न्यायालय में स्वामित्व को लेकर याचिकाएं प्रस्तुत हुई फलत :1961 तक अर्थात पूरे 10 वर्ष तक इन वनों का कानूनी या गैर कानूनी ढंग से सफाया होता रहा अंत में 18 लाख हेक्टेयर वन भूमि वेयर बनी उपयोग के लिए परिवर्तित कर ली गई 16 लाख हेक्टेयर का व्यवस्थापन अतिक्रामकों के नाम कर दिया गया और शेष वन भूमि या तो विवादों में फंसी है या उसके व्यवस्थापन के लिए प्रयास जारी है यह सब कहने का आशय इतना ही है की स्वतंत्रता के बाद इतने बड़े रकबे को जिसका यदि योजनाबद्ध तरीके से विकास किया गया होता और जो इन इलाकों में रहने वाली जनजातियों के अतिरिक्त शासकीय वनों में रहने वाली जनजातियों के एक बड़े भाग के लिए भी रोजीरोटी - जाता सकती थी उजाड़ और तबाह कर दिया गया यह वह रकबा था जिसमें आदिवासी बिना किसी परेशानी के रह सकते थे इस भूमि के एक भाग को कृषि के लिए विकसित किया जा सकता था और दूसरा निस्तार वनों के रूप में छोड़ा जा सकता था यह रकबा देश के कुछ राज्यों के क्षेत्रफल सेबड़ा है तथा विश्व के अनेक छोटे राष्ट्रों के कुल क्षेत्रफल से तुलनीय है।

1961 के बाद से ही भारत के दो प्रमुख समस्याओं ने विकरालता प्राप्त करना प्रारंभ की । देश की एक बड़े भाग से वनों की सफाई के साथ ही विशाल क्षेत्र में उत्पादक और बंजर भूमि का प्रसार होना प्रारंभ हो गया तथा भूक्षरण की समस्या बड़ी इसके साथ ही - एक दूसरी समस्या भी बड़ी वह यह की जनजातियों को अब पूरी तरह से शेष बचे शासकीय वनों पर निर्भर रहना पड़ा क्योंकि भारत सरकार सैद्धांतिक रूप से भी जनजातियों को आदम अवस्था से उभरने के लिए कृत संकल्प थीअतः शासकीय वनों से भी जनजातियों को अनेक प्रकार की सुविधा दी गई साथ ही जहां आवश्यक था वहां कृषि योग्य भूमि भी दी गई।

यहां मैं पुनः स्मरण दिलाना चाहूंगा कि पर्यावरण संरक्षण की योजनाएं भी विदेशी विशेषज्ञों द्वारा बिना भारतीय यथार्थ को समझे लागू की गई पर्यावरण से संबंधित नीतिगत निर्णय में भूगोलवेत्ताओं से कभी कोई सलाह नहीं ली गई जो मानव रहित पर्यावरण के अध्ययन में कभी विश्वास ही नहीं रखते थे जनजातियों के निवास स्थल वनों के अध्ययनों

का कार्य उन विशेषज्ञों को सोपा गया जिन्होंने मानव रहित वनों द्वारा पर्यावरण के विकास का विचार दिया आज स्थिति यह है कि एक और और पर्यावरण विशेषज्ञ वनों को मनुष्य से बचना चाहते हैं और दूसरी ओर क्षेत्रीय राजनीतियो के लिए प्रदर्शन कर रही है

जनजातीयो का सामाजिक और आर्थिक विकास

पर्यावरण विशेषज्ञ बचे हुए वनों को छूने को भी सलाह नहीं देते किंतु अर्थशास्त्रियों और समाजशास्त्रियों के पास ऐसा कोई रास्ता नहीं है की जनजातियों का विकास भी हो और पर्यावरण पर आज भी ना आवे। भूगोलवेत्ता इस जटिल प्रश्न पर इस संगोष्ठी में संतुलित विचार रख सकेंगे क्योंकि वे प्राकृति और मनुष्य दोनों को ही नियति को समझते हैं। इस संबंध में मेरी दृष्टि से उसे सामाजिक और आर्थिक मापदंड पर विचार किया जावे तो उचित होगा जिसके अनुसार हम जनजातियों के सामाजिक और आर्थिक स्तर को उठाना चाहते हैं। शिक्षा, चिकित्सा, विद्युत और आजीविकाओं की प्राथमिक समस्याओं को हल करना शासन का मुख्य कर्तव्य इस पर कार्य भी हो रहा है किंतु अनुभव है कि पढ़ने लिखने के बाद जिस जनजातीय सदस्य हमारी अपेक्षा यह होती है कि वह अपने समाज को आगे बढ़ाय वहां हम पाते हैं कि आधुनिक शिक्षा दीक्षा के बाद वह स्वयं को अपने समाज से अलग थलग महसूस करने लगता है। यही कारण है कि जनजातीय समाज में बाहर के राजनीतिक तत्वों का सहजता से प्रवेश हो जाता है। हम यह नहीं चाहेंगे कि जनजातीय सामान संचयन शिकार या स्थानांतरि कृषि की युग में लौटे हमें भी नहीं चाहेंगे कि उनमें निर्मित या मद्यपान की सामाजिक बुराइयां रहे परंतु उनके विकास का अर्थ भी नहीं होना चाहिए कि उन्हें भूमिहीन मजदूरों की जिंदगी जीने पड़े या उन्हें उनके उत्पादों का उचित मूल्य ना मिले।

जहां तक सामाजिक व्यवस्था का प्रश्न है उसमें जनजातीय समाजों की अनेक अच्छाइयों को आधुनिकता का रोग लग रहा है घोटाले खत्म हो रहे हैं। और पंचायतों की साख गिर रही है फिर भी अनेक अच्छाइयां मौजूद हैं जनजातीय समाज में स्त्रियों का स्थान ऊंचा है उनके लिए वैश्विक अभिशाप नहीं है इसी तरह विवाह तथा दहेज जैसी कुरीतियों से उन्हें जूझना नहीं पड़ता। यदि दिशा निर्देश सही हो तो जनजातीय समाज गांधी जी के ग्राम राज्य की कल्पना को आज भी रूप दे सकते हैं वस्तुत सीमित आवश्यकता और आडंबर विहीन जनजातीय समाज सामाजिक स्तर पर दूसरों को बहुत कुछ सीखा सकता है।

संदर्भ सूची

1. अ- एल्विन वैरियर,-1947 "लास आफ नर्व ।"

   ब- एल्विन वैरियर -1958 "ए फिलासफी फार नेफा नेफा एडमिनिस्ट्रेश"न।

2. घुरिये, जी- .एस.1943 "दि अबारोजनल्स एण्ड देयर फ्यूचर" दिल्ली

3. अ- हैमनडाफ, क्रिस्टोफ वान-1948 "दि राजगोडस आफ आदिलाबाद मैगजीन लंदन ."

   ब- 1971 "नागालैंड फेसेस दि मॉडर्न वर्ल्ड ज्योग्राफीकल मैगजीन लंदन। "

   स- 1982 "ट्राइब्स आफ इंडिया आक्सफोर्ड यूनिवर्सिटी लंदन। "

4. शुक्ला हीरालाल -1987 "आदिवासी सामन्तवाद" ज्ञान पब्लिकेशन हाउस दिल्ली

SHODH
SAHITYA
शोध साहित्य